दिसुम का सिंगार

सावित्री बड़ाईक

दिसुम का सिंगार

सावित्री बड़ाईक

अनुज्ञा

वैधानिक चेतावनी

पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन, फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक व प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित आलेख/आलेखों के सर्वाधिकार मूल रचनाकार/रचनाकारों के पास सुरक्षित हैं। पुस्तक में व्यक्त विचार पूर्णतया लेखक/लेखकों अथवा संपादक/संपादकों के हैं। यह जरूरी नहीं है कि प्रकाशक इन विचारों से पूर्ण या आंशिक रूप से सहमति रखे। किसी भी विवाद के लिए न्यायालय दिल्ली ही मान्य होगा।

© लेखक

प्रथम संस्करण : 2023

ISBN 978-81-19020-15-7

प्रकाशक

अनुज्ञा बुक्स

1/10206, लेन नं. 1E, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110 032

mail : anuugyabooks@gmail.com • salesanuugyabooks@gmail.com

फोन : 7291920186, 09350809192 • www : anuugyabooks.com

आवरण : बीजु टोप्पो

मुद्रक

अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32

DISUM KA SRINGAR

Tribal Poetry *by* ***Dr. Savitri Baraik***

स्मृतिशेष आयो (माँ) को
जो हमारे लिए पटिया, गीत और
सपने बुनती थीं

आदिवासी जीवन दर्शन की कविताएँ

सावित्री बड़ाईक जी की कविताएँ जब तब छपती रही हैं लेकिन 'दिसुम का सिंगार' आपका पहला काव्य संग्रह है। इस संग्रह की कविताओं में आप आदिवासियों के जीवन दर्शन, उनकी प्रतिरोध चेतना और श्रम के सौंदर्य में उनकी आस्था के अनुरूप ही अपनी विभिन्न कविताओं में श्रृंगार का आदिवासी मानक प्रस्तुत करती हैं। आपकी कविताएँ दिखाती हैं कि आदिवासी सोने-चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुओं से बने आभूषणों से सम्पन्न कृत्रिम अलंकरण में विश्वास नहीं करते। वे तो श्रम से पैदा खेती-किसानी से धरती के सौंदर्य में अभिवृद्धि करने में यकीन रखते हैं। इसी क्रम में पराये बीजों, रासायनिक उर्वरकों और कल-कारखानों से कुरूप होती जा रही धरती की चिंता आपकी इन कविताओं में झलकती है। वे गोदना जैसे परम्परागत आदिवासी बनाव-श्रृंगार को आदिवासी संघर्ष के इतिहास और संस्कृति की विषय वस्तु की व्यंजना के माध्यम के रूप में चिह्नित करती हैं।

कविताओं में आदिवासियों समेत बहुसंख्यक श्रम शक्ति को संसाधनविहीन बनाकर विषमता का पिरामिड खड़ा कर उसके शीर्ष पर विराजमान मुट्ठी भर लोगों के छल-छद्म, शोषण और अन्याय को रेखांकित किया गया है। इन प्रतिगामी ताकतों से अलग-अलग संघर्ष करते हुए सफल होना कठिन है, अत: धरती को और उसी के साथ जुड़े अपने अस्तित्व को बचाने के लिए अपने-अपने स्तर पर आन्दोलनरत तमाम छोटे-बड़े समूहों-संगठनों के बीच तालमेल की जरूरत पर बल दिया गया है, आदिवासियों को अपने सहधर्मा इन आन्दोलनकारियों से सहिया जोड़ने के लिए कहा गया है। इस संदर्भ में आदिवासी अखड़ा की संवादधर्मिता के जनतांत्रिक पहलू को भी कविता में रेखांकित किया गया है। सावित्री जी अपनी इन कविताओं के जरिए तथाकथित सभ्य लोगों को भी चेताती है कि विकास के नाम पर उनके जल-जंगल-जमीन पर हमले करना बंद करके उनके वैकल्पिक जीवन दर्शन और स्वायत्त जीवन शैली का सम्मान करना चाहिए क्योंकि आदिवासी नहीं बचेगा, तो यह धरती, यह प्रकृति भी आधुनिक मनुष्य के लोभ-लालच से बच नहीं पायेगी।

इन कविताओं में आदिवासी बाजार और पूंजी की संयुक्त ताकत के सामने आदिवासी पहाड़ की तरह खड़े हुए नजर आते हैं।

भाषा की लिपि और शास्त्रीय ज्ञान से वंचित रहने के कारण आदिवासियों को सभ्य समाज पिछड़ा बताता रहा है लेकिन कवयित्री सावित्री जी अपने आदिवासी पुरखों के वस्त्र निर्माण, पुरखों के लौहकर्म के ज्ञान, शिल्प कौशलों और उनकी हस्त-कलाओं के विभिन्न रूपों पर कविताएँ लिखकर स्थापित कर देती हैं कि सभ्यता-संस्कृति के आर्य मानकों से इतर आदिवासी आयाम भी रहे हैं और अब वक्त आ गया है कि इतिहास में आदिवासियों की पुरखा ज्ञान परम्परा और उनकी कलाओं को उनका वाजिब स्थान दिलवाया जाए। आदिवासी समाज उपयोगमूलकता और सौंदर्यमूलकता के आधार पर कलाओं को शिल्पकला और ललितकला, इस तरह की श्रेणियों और स्तरीकरण में विभाजित नहीं करता। आदिवासी कलाओं पर लिखी गई कविताओं में आदिवासी कला दृष्टि के इस विशिष्ट पहलू को साफ देखा जा सकता है।

आदिवासी के साथ-साथ एक स्त्री होने के कारण सावित्री बड़ाईक की कविताओं में आदिवासी स्त्री जीवन की विभिन्न छवियाँ भी स्वत: ही आ गई हैं। यह आदिवासी स्त्री घर की चार-दीवारी तक सीमित सामंती उच्च जातियों की स्त्री के जैसी अपनी आजादी के लिए अंदर ही अंदर घुटती-बिलखती स्त्री नहीं है, बल्कि खेतों-जंगलों में श्रम करती और हाट-बाजार करती स्त्री है। खेती-किसानी और जंगल पर होते हमलों के कारण छिनते आजीविका के स्रोतों के कारण आदिवासी स्त्रियों को मजदूरी की तलाश में आज शहरों के चौराहों पर भी देखा जा सकता है। काम की तलाश में शहर जाने को मजबूर ऐसी आदिवासी स्त्रियों की कर्मठता और स्वाभिमान को इन कविताओं में याद किया गया है। नगरों-महानगरों में चंद निवालों के बल पर आदिवासी कामवालियों से जो बेगार करवाई जाती है, उनका जो शोषण होता है, उसके खिलाफ ये कविताएँ पाठकों को झकझारने का काम करती हैं। आदिवासी स्त्री की जिजीविषा और संघर्षशीलता के इस प्रसंग में अपनी माँ की ममता और स्नेह को याद करते हुए कवयित्री लिखती हैं कि आदिवासी माँओं के कठोर श्रम करने वाले हाथ और धरती को नापते उनके पैर उसकी स्मृति में अमिट रूप से अंकित हैं। अपनी श्रमशील माँ की शंख नदी सी चौड़ी मुस्कान और उनके दुलार का वितान आज भी कवयित्री बेटी को आश्वस्ति से भर देने वाला है।

– प्रमोद मीणा

अनुक्रम

आदिवासी जीवन दर्शन की कविताएँ	*7*
प्राक्कथन	*13*
माटी और गोड़ा भात	19
दिसुम का सिंगार	21
हँसिया और हथौड़ा असहमत हैं	28
अमिट गहना है गोदना	30
हमारे हिस्से की धरती	32
पत्थलगड़ी	34
असुर और कोंध	35
आदिवासी स्त्रियाँ गाती हैं क्रांति गीत	37
शहर के चौराहे पर	40
धान	42
सरई धरती बचाओ	44
पुनर्वास नहीं हो सकता हमारा	46
पगडंडियों के पहरेदार	48
मरङ गोमके	51
आमको-सिमको	53
लौह महिला	56
पाषाण – पटिया	59
पुरखे और पानी	62
आदि पाठशाला है धरती	65

माटी और चाक 69
करघा और हुनर 71
पुरखा तकनीक 73
बाँस शिल्प 75
छोड़ब नहीं हुनर 77
अखड़ा में जुटान 80
मदइत 84
आओ सहिया जोड़ें 86
आदि वैज्ञानिक 88
भूख 91
सखुआ के पेड़ हैं हम 93
छउवा 94
अधिकारों की पगडंडियाँ 96
पहाड़ उदास है 98
कोविड महामारी-1 100
कोविड महामारी-2 101
कोविड महामारी-3 102
धरती का उदास रंग 104
पटिया भर जमीन 106
बुनकर आँखें 108
छत्र-छाया 110
शंख नदी सी चौड़ी मुस्कान 111
पीढ़ा – पटिया 113
घर-घोंसला उदास है 114
उलिहातु-1 116
उलिहातु-2 118
धरती ने प्रेम के लिए स्पेस दिया 120

द:सोम जलप्रपात 121
सोहराय-1 123
सोहराय-2 125
जतरा में महाजुटान के सपने 127
हाट में आदिवासी 129
यह धरती है झूमर की 133
श्रम का सौन्दर्य 135
वे लोहा ले रही हैं 137
पत्तल भर भात और गाने की आजादी 139
वापसी 141
हमें माफ करना (सुनीता खाखा के लिए) 144
बहुरंग धनुषी धरती 146
किताबें 148
पर्यावरण के पाठ 150
लेखक परिचय 156

प्राक्कथन

आदिवासी संस्कृति में जीवंत परम्पराओं का समावेश है। मैं इस काब्य संग्रह के जरिए पाठकों को आधुनिक जीवनशैली की कृत्रिमताओं, जटिलताओं से दूर दिसुम (देस) में वापस लिये जा रही हूँ। हमारी संस्कृति, खान-पान, कला को बेहतर ढंग से समझने और कथित मुख्यधारा की संस्कृति का प्रतिलोम रचकर बेहतर देस का सपना देखने के लिए आमंत्रित कर रही हूँ। बाजारवाद, पूँजीवाद से मुकाबला करने, जलवायु संकट, महामारियों से बचने का आखिर उपाय क्या है? क्या इसका कोई देशज समाधान है? भूख, कुपोषण, खाद्य संकट, रक्ताल्पता का आखिर क्या समाधान है? मुझे लगता है जनसंस्कृति, आदिवासी संस्कृति से ही कॉरपोरेट संस्कृति से मुकाबला किया जा सकता है। इसका समाधान आदिवासियत और देशज खेती है, बैल आधारित खेती है, हमारी परम्परागत खेती है जो संस्कृति, कुटीर उद्योग, पशुपालन और कुक्कुट पालन, मछली पालन से भी जुड़ा हुआ है। दरअसल देशज खेती संस्कृति और कुटीर उद्योगों को भी पल्लवित और पुष्पित करने की कला है और लोगों को स्वावलम्बी भी बनाती है। यह प्रकृति और संस्कृति के सम्पोषण से भी सम्बद्ध है। देशज खेती का सीधा सम्बन्ध प्रकृति के उपादानों से है। जंगल, पानी, जैवविविधता, पादप विविधता देशज खेती से सीधे-सीधे जुड़े हैं। भूमि की आकृति, जलवायु के आधार पर पुरखों ने खेती का विकास किया। सैंकड़ों किस्म के धान, मोटे अनाज, साग-पात को पनपने देने के लिए देशज खाद का इस्तेमाल किया जिससे खान-पान की विविधता बनी रही। मछलियों, घोंघें, केंकड़ा को पारम्परिक प्रोटीन के स्रोत समझकर उनको खेतों, तालाबों और पहाड़ी जलधाराओं में बचाये रखा। छोटे किसान खेती से विमुख होते जा रहे हैं। जंगल, जमीन, खेती की जमीन पर कॉरपोरेट की कुदृष्टि पड़ चुकी है। पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, बाजारवाद का निषेध आदिवासी जीवन दर्शन और जीवन मूल्यों से ही किया जा सकता है। वर्तमान समय में बाजारवाद पानी, पहाड़, पतरा-जंगल, सभी को अपने कब्जे में लेकर विकास के अंतिम छोर